

स्वाध्याय का सरल स्वाध्याय

• श्री लक्ष्मीचन्द्र 'सरोज'

उपक्रम - स्वाध्याय का महत्व पढ़े-लिखे और बिना पढ़े-लिखे, सभी व्यक्तियों के लिये समान रूप से है फिर भी श्रोता की अपेक्षा वक्ता का और प्रश्न पूछने वाले की अपेक्षा उत्तर देने वाले का महत्व उतना अधिक है कि जितना भी शक्य और सम्भव है। यदि श्रोता न हो तो वक्ता किस के लिए प्रवचन करें? और वक्ता नहीं हो तो श्रोता किससे-किसके प्रवचन सुने? स्वाध्याय के आधार-भूत वक्ता और श्रोता का सम्बन्ध तो रोटी-दाल जैसा है पर कभी-कभी परिस्थिति विशेष में वक्ता श्रोता और श्रोता वक्ता भी बन सकता है। अनुबन्ध इतना है कि वक्ता और श्रोता दोनों को विषयविद और वक्तृत्व कलाविद होना चाहिए। यह परम प्रसन्नता की बात है कि जैन ग्रन्थकारों ने वक्ता और श्रोता के सद्गुणों और दुर्गुणों की ओर भी संकेत किया है पर यदि यह कहा या लिखा जावे कि आज के समाज में अच्छे वक्ता और श्रोता का अभाव सा है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। धार्मिक प्रवचन तो वैसे ही हाशिये पर आ गए हैं जैसे सत्साहित्य आ गया और राजनीति साहित्य सदृश धर्म-क्षेत्र में छा गई है। प्रवचन पर वचन हो गए। हमें एक श्रेष्ठ वक्ता और श्रोता बनने के लिए न केवल स्वाध्याय का सरल स्वाध्याय करना होगा बल्कि स्वाध्याय के विषय को भी बखूबी समझना होगा और पठित विषय का दैनिक जीवन में प्रयोग करके जीवन के धरातल को उन्नत और उज्ज्वल भी बनाना होगा। वक्ता और श्रोता बनने के लिए उत्साह-जिज्ञासा, धैर्य-सत्संग, बुद्धि-युक्ति तो चाहिए ही साथ ही श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, देव-शास्त्र-गुरु की पहिचान की शक्ति और उनमें अनुरक्ति तथा उन जैसी प्रवृत्ति एवं संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति भी चाहिए। महज अन्तरात्मा की अनुभूतियों की, अपनी सुनिश्चित भाषा शैली भाव-भंगिमा में बोलने से काम नहीं चलेगा बल्कि जन साधारण की समझ में आने लायक विषय-चयन, भाषा-शैली, उचित उदाहरण तर्क-विज्ञान का भी सहारा लेना होगा। बात तो संयुक्तिक सारगर्भित होगी ही पर उसे सर्वथा सत्य या परम सत्य मनवाने का पूर्वाग्रह त्यागना होगा। यदि हम धार्मिक स्वाध्याय के सन्दर्भ में कुछ लौकिक प्रसंग भी दें और अन्य धार्मिक प्रकरणों में समानान्तर सूर्य सत्य सिद्धान्तों को लेकर तुलनात्मक अध्ययन-अनुभव अभ्यास करें तो वक्ता और श्रोता का ज्ञान सुविकसित होगा तथा वक्ता का श्रोताओं पर आकर्षक प्रभाव पड़ेगा यानी स्वाध्याय सफल होगा। स्वाध्याय, उस सत्संग का मूलाधार है जिसके कारण रत्नाकर सदृश ठह आदि कवि महर्षि वाल्मीकि बन सके थे और विद्युच्चोर-अजन चोर भी निर्ग्रन्थ होकर लोक में प्रतिष्ठा पा सके थे।

ज्ञान-ज्ञानी जननी - जिस ज्ञान के बिना मुक्ति श्री नहीं मिलती और जिस ज्ञान की सभी धर्मों के आचार्यों ने सराहना की उसी ज्ञान के विषय में 'छहदाला' के सुकवि पंडित दौलतराम जी ने प्रस्तुत पद्य लिखकर गागर में सागर ही भर दिया है -

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण। इह परमामृत जन्म जरामृत रोग निवारण॥

चूँकि ज्ञान से बढ़कर संसार में कुछ भी नहीं है, अतएव वह सुख का मूलभूत कारण है। यदि लोक में कुछ परम अमृत है तो वह ज्ञान है, जो जन्म और जरा तथा मरण को मिटाने में समर्थ है। अकल बड़ी या भैस इस कहावत को इसमें निहित वास्तविक सत्य आशय को भला कौन नहीं जानता? और मानवीय जगती उसके बल और धन से बहुत बड़ी है, वह तो अतीत से आज तक सूर्य सत्य ही बना है। अन्धे आदमी के लिए सूरदास सदृश प्रज्ञा चक्षु शब्द का प्रयोग भी आपने सुना होगा और प्रयोग किया भी होगा तथा उसकी उपयोगिता पूछने पर किसी विद्वान ने आपको यह भी बताया होगा कि चर्म चक्षु की अपेक्षा प्रज्ञा चक्षु का महत्व उतना अधिक है कि जितना भी इस दिशा में शक्य और सम्भव है।

मुख में नाक के ऊपर स्थित बाहर से दीखने वाली आँखें यदि नहीं भी हों तो कोई चिन्ता की बात नहीं है पर यदि अन्तर में स्थित भीतरी बुद्धि और विवेक की आँख जाती रहे तो समझो कि हमारे पास कुछ भी नहीं बचा। सम्भव है आपने किसी क्रोधित पिता को अपने पुत्र से यह भी कहते सुना हो कि क्या तुम्हारे हिये की भी फूट गई है। भगवान करे कि किसी की बाहर या भीतर की आँखें फूटें पर यदि हॉनहार या अमिट भाग्य की प्रेरणा से कदाचित ऐसा अवसर आ ही जावे तो बाहर की आँखें भले फूट जावें पर भीतर की आँखें नहीं फूटें अन्यथा अनेक सूरदास, होमर, मिल्टन विश्व को सत्साहित्य न दे पावेगे। यों तो बातचीत के दौरान में सभी अपने लिये कच्चा और बच्चा नहीं बल्कि चच्चा और सच्चा ज्ञानी ही होने का दम भरते हैं और अपने ज्ञान एवं धर्म को एकदम शुद्ध परिमार्जित और परिष्कृत होने का दम्य या दावा भी करते हैं परन्तु मुझे तो इस दिशा में पार्श्वपुराण के प्रणेता भूधरदास जी का 'बोधिदुर्लभ' भावना विषयक दोहा ही अधिक उपयुक्त लगता है। कोई माने या न माने पर है सूर्य सत्य -

धन कन कंचन राज-सुख, सबहि सुलभ कर जान।

दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥

अर्थात् संसार में सब कुछ सहज सुलभ है पर वास्तविक आत्मिक ज्ञान नहीं और इसीलिए सुकरात को Know Thy self अर्थात् अपने को पहिचानो कहना पड़ा तथा वैदिक महर्षियों को भी 'आत्मानं बिद्धि' अर्थात् स्वयं को आत्मा को जानो लिखना पड़ा। जिन्होंने आत्मिक ज्ञान, आत्मबोध, आत्मानुभूति, अन्तर की आँख अथवा विवेकमयी हिताहित की दृष्टि पा ली, वे ही मेरे लेखे सच्चे ज्ञानी हैं, जिनकी भीतर और बाहर की आँखें सतर्क सक्रिय और सजग होकर एक ओर ज्ञान के आलोक में सर्वस्व या स्व तत्व देखती हैं और दूसरी ओर लोक में 'नेहास्ति किंचन' (लोक में मेरा कुछ भी नहीं) अर्थात् स्व तत्व आत्मा लेखती हैं। ऐसी एक से अधिक ईश्वरों या परमात्माओं को जन्म और जीवन देने वाली स्वाध्याय है। संक्षेप में एक वाक्य में, स्वाध्याय तो ज्ञान और ज्ञानी दोनों की ही जननी है और स्व पर भेद विज्ञान अथवा शरीर और आत्मा के रहस्य को समझाने वाली दीप-शिखा या दीपिका स्वाध्याय ही है।

शिक्षा की आदि स्रोत - यह तो बच्चे से लगा कर बूढ़े तक सभी जानते हैं कि शिक्षा अपूर्ण मनुष्य को पूर्ण बनाती है और शिक्षा के ध्येय और उद्देश्य के सम्बन्ध में शिक्षा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परामर्श लें तो वे कहेंगे कि शिक्षा का ध्येय चरित्र निर्माण है। और शिक्षा का उद्देश्य तो सदाचार की प्राप्ति है। तथा यही बात हम स्पेन्सर से पूछें तो वे हर्वाट से भी आगे जाकर कहेंगे कि शिक्षा का उद्देश्य तो सर्वतोमुखी तैयारी है। पर ये सभी बातें तो आज के युग की हैं जब हम अतीत की अपेक्षा आज करोड़ों किलोमीटर दूर आ गये हैं पर जब हम पहले मील के पहले फलार्ग के पहले कदम पर रहे होंगे

तब धर्म औ दर्शन, साहित्य और राजनीति, समाज और राष्ट्र तथा विश्व जैसे विविध विषयों की चर्चा तो सुदूर रही, भाषा और लिपि, कागज और स्याही तथा कलम जैसी सहज सुलभ चीजों का अभाव रहा होगा और तब मानवीय जीवन को एक अविच्छिन्न संघर्ष कहने वाली जो भावना रही होगी वही स्वाध्याय शिक्षा का आदि स्रोत होगी और वही उस समय के व्यक्ति और समाज के अलिखित अध्ययन, अनुभव, अभ्यास की मूलभूत प्रेरणा रही होगी।

संक्षेप में आज के युग में जितने भी विविध विषय हैं, वे सब एक से अधिक वर्षों के स्वाध्यायों और परीक्षणों के परिणाम हैं। विचार के धरातल में स्वाध्याय ही शिक्षा का वह आदि स्रोत है, जिसने मानव को योग्यतानुसार आगे बढ़ाया और बार-बार सिखलाया कि आदमी, अगर तू आदमी है तो आदमी को आदमी समझ। मेरी आस्था है कि अतीत और आज के युग में भी इस से बढ़कर न कोई धर्म और दर्शन अतीत में था, न आज है और न आगे भी होगा।

स्वाध्याय का अर्थ-भाव - स्वाध्याय का अर्थ सीधा साधा है पर मूलतः भावगहन चिन्तन एवं मनन को अपने में समेटे हैं। स्वाध्याय में दो शब्द जुड़े हैं :- (१) स्व (२) अध्याय। स्व से अभिप्राय आत्मा का है और अध्याय से आशय प्रकरण, पाठ, परिच्छेद, सर्ग आदि का है। अतएव समूचे स्वाध्याय शब्द का आर्थ हुआ कि आत्मा के अध्याय को पढ़ना। दूसरे शब्दों में स्वाध्याय का सरल अर्थ यह है कि धर्म और दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ पढ़ना, शरीर और आत्मा के भेद-विज्ञान को समझना, तीन काल-छह द्रव्य और छह लेश्या तथा छहकाय के जीव, पाँच अस्तिकाय, पाँच व्रत, पाँच समिति, पाँच गति, पाँच ज्ञान, पाँच चरित्र ये सभी मोक्ष के मूलभूत कारण हैं, इन पर विश्वास करने वाला सम्यग्दृष्टि है। यह बात श्री १००८ जिनेन्द्र देव ने दिव्यध्वनि में कही है। इनके प्रयोग पर ही लोक-जीवन मंगलमय होगा और परलोक में भी सुख शान्ति, सन्तोष समृद्धि भी प्राप्त होगी।

पर स्वाध्याय का अर्थ हमने अनुचित अथवा अन्यथा या अपने हिसाब से कर लिया। अपने आप अध्ययन करना या अपने आप पढ़ना स्वीकार कर लिया, जब जैसा चाहा वैसा सुन या पढ़ लिया, शंका होने पर मनमाना समाधान करना या कतराना भी हमने सीख लिया। गुरु के सम्पर्क में आवश्यकता को नकार दिया। अपने आप का अध्ययन, अनुभव, अभ्यास तो आशातीत अपूर्ण है और यद्वातद्वा तथा अष्ट शण्ट एवं इतना अनर्गल विकृत हो जाता है कि उस में सुधार करना तो पूरी हिमालय की चढ़ाई ही बन जाता है। स्वाध्याय का अपूर्ण मनमाना अर्थ स्वीकार लें तब तो घर-घर अखबार, पत्र पत्रिका का स्वाध्याय हो गया, संस्थान में आसीन संचालक श्रेष्ठ बहीखाता या लेखा जोखा देखें तो स्वाध्याय हो गया, बालक-बालिकायें पाठ्यक्रम में निर्धारित कोर्स व फोर्स की किताबें पढ़ने लगे तो स्वाध्याय हो गया, युवक-युवतियाँ प्रिय विशिष्ट लेखक गुलशनन्दा आदि के उन्मादक उपन्यास पढ़ें तो स्वाध्याय हो गया, मन्दिर-स्थानक-उपाश्रय में जाकर जो भी ग्रन्थ हाथ आ गया, उसे कहीं से भी पढ़ लिया सो स्वाध्याय हो गया, यह शुद्ध भ्रम है, जो दूर होना ही चाहिये।

एक स्वाध्याय शब्द में तीन शब्द जुड़े हैं :- (१) स्व (२) अधि (३) आय। स्व का अर्थ अपना या आत्मा है और अधि का अर्थ ज्ञान है, तथा आय का अर्थ आमदनी है, प्राप्ति है। इसलिए अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना ही स्वाध्याय है। चूँकि पूर्व अनुच्छेद में उल्लेखित कार्यों से आत्मानुभूत, आत्मबोध, आत्मसंयम की अणुभर भी प्राप्ति नहीं होती है अतएव वे सभी कार्य उबाऊ दिमाग बिगाड़ू दमघोटू कार्य हैं। उनसे बचना चाहिए और किसी प्रामाणिक वस्तविक विद्वान-गुरु (श्रमण) के मार्ग दर्शन में

स्वाध्याय करने का स्वभाव बढ़ाना चाहिए। जिनवाणी में स्वाध्याय के हेतु जो चार अनुयोग बतलाए हैं, वे ये हैं - (१) प्रथमानुयोग (२) करणानुयोग (३) चरणानुयोग (४) द्रव्यानुयोग। इन चारों अनुयोगों का ही क्रमशः सुविधानुसार स्वाध्याय करना चाहिए। एक अनुयोग को प्राथमिकता देकर भी अन्य अनुयोग को अस्वीकार नहीं करना चाहिए। जब चारों अनुयोग, जिनेन्द्रदेव की दिव्य ध्वनि द्वारा समर्थित हैं तब उन्हें जैसे का तैसा ही क्रम से पढ़ना चाहिए। शंका होने, समझ में न आने, पुष्टि के हेतु किसी विद्वान या श्रमण से पूछ लेने में गौरव की हानि नहीं समझना चाहिए।

स्वाध्याय के पाँच प्रकार - स्वाध्याय तप के पाँच प्रकार हैं अथवा स्वाध्याय को सार्थक बनाने वाले, स्वाध्याय को सुविकसित करने वाले पाँच तत्त्व हैं, जिन्हें आचार्य उमा स्वामी ने अपने अमर ग्रन्थ 'मोक्ष-शास्त्र' में नवमें अध्याय के ३५वें सूत्र में इस प्रकार लिखा है -वाचनावृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशाः अर्थात् स्वाध्याय को वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश इन पाँच तत्त्वों के आधार पर उतना सुविकसित करना चाहिए कि जितना भी शक्य और सम्भव हो।

(१) **वाचना** - धर्म-ग्रन्थ के शब्दों को निर्दोष उच्चारण करके सुस्पष्ट पढ़ना-पढ़ाना, पठित शब्दों का सही 'आगमानुसार-प्रकरणानुसार' अर्थ स्वयं समझना और अन्य जनों को भी समझाना, शब्द और अर्थ दोनों को दृष्टि पथ में रखते हुए भव्य जीवों की उनकी भाषा शैली में समझाना।

(२) **पृच्छना** - अपने संशय को दूर करने के लिए अथवा स्वाध्याय द्वारा सीखे हुए विषय को सदृढ़ बनाने के लिए, विनयमयी बुद्धि और विनम्र विवेक लिए किसी विद्वान या गुरु साधु से प्रश्न पूछना पृच्छना है परन्तु अपने अध्ययन अनुभव अभ्यास की अभिव्यक्ति के लिए, अपनी विद्वन्ना बधारने के लिए अपना प्रभुत्व स्थापित करने, अन्य को अपमानित करने के लिए प्रश्न पूछना अनुचित निन्द्य है।

(३) **अनुप्रेक्षा** - विद्वान वक्ता या आचरणशील आचार्य द्वारा प्रतिपादित धार्मिक विषय या तत्व चर्चा के विषय में पुनः पुनः विचार करना, मनन-चिन्तन निदिध्यासन करना, सहज सुलभ पठित-लिखित ज्ञान को अपने ज्ञान की तुला पर आगम के परिप्रेक्ष्य में तौलना अनुप्रेक्षा है। (४) आम्नाय निर्दोष (ह्रस्व-दीर्घ-विराम पर ध्यान रखते) सुस्पष्ट (शुद्ध उच्चारण करते) न अधिक जल्दी न अधिक धीमे स्वर में भावनात्मक दृष्टिकोण लिए शुद्धतम पाठ करना। प्रमाद रहित होकर, उत्साहपूर्वक पठन-पाठन करना-वर्णित विषय समझना-समझाना आम्नाय है।

(५) **धर्मोपदेश** - धर्म का ही उपदेश देना, धर्म धारण करने की प्रेरणा अवश्य देना पर कर्म-बन्ध का स्वर्णोपदेश नहीं देना। धार्मिक तात्विक चर्चा में गम्भीर विषय को सर्वसाधारण की सरल सुबोध भाषा शैली में समझाना, जीवन के धरातल के उन्नत करने के लिए धर्मोपदेश बिना पूछे भी देना उचित है।

स्वाध्याय परंतपः - जिस स्वाध्याय को जैनाचार्यों ने परंतप कहा, उसी को श्रावक के नित्य कर्मों में तीसरा स्थान दिया और श्रद्धा-विवेक-क्रिया बढ़ाने के लिए दो बार अनिवार्य भी कर दिया। स्वाध्याय बाहर से देखने पर भले ही सामान्य लगे पर भीतर ही भीतर कितना गम्भीर तम कार्य है यह विरले विवेकी ही समझ पाते हैं। आसनों में जैसा शवासन सरल लगता है पर शारीरिक शिथिलीकरण इन्द्रिय-मन नियंत्रण करना काफी कठिनतम लगता है वैसे ही स्वाध्याय में इन्द्रिय और मन को नियन्त्रित कर, किसी विशिष्ट विषय पर ही केन्द्रित कर ऊहापोह करना कष्ट साध्य कार्य है। धर्म-सभा में बैठकर स्वाध्याय करना और शंका-समाधान करना कोई गुड़ियों का खेल नहीं है और सभी जिज्ञासुओं को सम्यक्कीत्या समाधान कर पाना तो हिमालय की एवरेस्ट की ही चढ़ाई है। वक्ता का एक गुण जहाँ प्रश्नों की बौछार से

विचलित नहीं होना बतलाया वहाँ श्रोता का एक गुण 'सार सार को गहि रहे, थोथा देय उड़ाय' भी कहा। श्रोता पूर्वापर विचारक होने के साथ परिस्थिति विशेष में निस्संयोजन स्वभावी हो और अपने अन्तःकरण में पूर्वाग्रह वश कोई भूल भ्रम हो तो भी निस्संकोच स्वीकार कर सुधार ले।

आचार्य प्रवर उमास्वामी ने अपने अमरग्रन्थ मोक्ष शास्त्र अपर नाम तत्त्वार्थ सूत्र में नवमें अध्याय में निर्जरा तत्व का वर्णन करते हुये दो प्रकार के तप बतलाये हैं :- (१) बाह्यतप (२) आभ्यन्तर तप। दोनों ही प्रकार के तप छह छह प्रकार के बतलाये हैं। (१) बाह्यतप से आशय उन तपों का है जो शरीर सम्बन्धी हों और बाहर से दिखें। ये अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस-परित्याग, विविक्त शय्यासन और कायक्लेश हैं।

(२) आभ्यन्तर तप से अभिप्राय उनतपों से है, जो आत्मा के समीप के सम्बन्धी गुण है और जो बाहर दिखाई नहीं देते हैं। ये प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान है।

तपों के वर्गीकरण को दृष्टि-पथ में रखते हुए स्वाध्याय को आभ्यान्तर तप कहा जा सकता है। जैसे अग्नि, घास के ढेर को क्षण भर में जला कर राख कर देती है वैसे ही तप भी सभी कर्मों को जला कर सर्वदा के लिए नष्ट कर देता है। भगवती आराधना में आचार्य शिवकोटिने यह लिखा पर तप क्या है? प्रस्तुत प्रश्न का संक्षिप्त उत्तर यह है कि इच्छा का निरोध करना तप है। और ऐसा तप उत्तम संहनन धारक ही कर पाते हैं, विशेषतया ध्यान तप वे भी अधिक तप अन्तर्मुहूर्त तक ही कर पाते हैं।

स्वाध्याय की शक्ति का रहस्य - स्वाध्याय की शक्ति का रहस्य अपार है। स्वाध्याय का रहस्य इतना महत्वमय है कि वह शैतान, हैवान को बखूबी इन्सान ही नहीं बल्कि भगवान भी बनाने में समर्थ है परन्तु स्वाध्याय के निम्न लिखित सूत्रों को दृष्टि-पथ में रखना अनिवार्य है -

- (१) जियात् अपने को पहिंचान, जिओ और जीने दो की भावना लिये हो।
- (२) स्वाध्याय एक ओर धार्मिक हो और दूसरी ओर मनोवैज्ञानिक तथा आदर्शवादी।
- (३) स्वाध्याय-सुख-शान्ति लाने, आह और कराह मिटाने, परन्तु ज्ञान के दम्य, विज्ञानपन, प्रदर्शन के लिये नहीं हो।
- (४) स्वाध्याय सिखाती है कि जो जानता है कि वह जानता है, सचमुच ज्ञानी है।
- (५) स्वाध्याय सिखाती है कि जो जानता है पर नहीं जानता है कि जानता है, सीधा है।
- (६) स्वाध्याय जतलाती है कि जो नहीं जानता कि वह नहीं जानता है, शून्य है।
- (७) स्वाध्याय सिखलाती है कि जो नहीं जानता पर जानता कि जानता है, मूर्ख है।

उत्तराध्ययन में आचार्य रामसेन ने स्वाध्याय और ध्यान के विषय में लिखा -

स्वाध्याद् ध्यानम ध्यमास्तां ध्यानात् स्वाययायमामनेत।

ध्यान स्वाध्याय सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते॥

अर्थात् स्वाध्याय के पश्चात् ध्यान और ध्यान के पश्चात् स्वाध्याय, इस प्रकार ध्यान और स्वाध्याय की पुनरावृत्ति से परमात्म स्वरूप उपलब्ध होता है।

* * * * *

२६ शास्त्री कॉलोनी जावरा (मध्यप्रदेश)